

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 1: मनु की कन्याओं की सन्तति

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



दिव्य प्रकाश की तीन धाराएँ एक ही आश्रम पर आ मिलती हैं: ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक साथ ऋषि अत्रि के वन में अवतरित होते हैं, और चतुर्थ स्कन्ध का आरम्भ देवताओं के अंशों से तीन पुत्रों के जन्म के वचन के साथ होता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। इस अध्याय के साथ हम चतुर्थ स्कन्ध में प्रवेश करते हैं। तृतीय स्कन्ध के अन्त में भगवान् कपिल द्वारा अपनी माता देवहूति को दिए गए दिव्य उपदेश को पूर्ण करने के पश्चात्, महर्षि मैत्रेय अब विदुर के अनुरोध पर उस वंश-प्रवाह की ओर मुड़ते हैं जो प्रथम पुरुष स्वयम्भुव मनु से निकलता है। चतुर्थ

स्कन्ध का यह प्रथम अध्याय ऊपरी दृष्टि से एक वंशावली है — मनु तथा ऋषियों की कन्याओं और उनसे उत्पन्न ऋषियों, राजाओं, देवताओं तथा असुरों का सुव्यवस्थित विवरण। किन्तु नामों की इस नदी में विस्मय के क्षण बुने हुए हैं: स्वयं भगवान् का यज्ञ-देवता के रूप में जन्म, तीनों महान् देवों का एक ही वन-आश्रम में एक साथ अवतरण, तथा पृथ्वी पर दिव्य ऋषि नर-नारायण का प्राकट्य। भक्त की दृष्टि से पढ़ने पर यह “नामों की सूची” इस बात का मानचित्र बन जाती है कि किस प्रकार दिव्यता बार-बार पवित्र गृहस्थों के माध्यम से इस संसार में प्रवेश करती है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 1 (प्रथम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: स्वायम्भुव मनु की कन्याओं की सन्तति
- मुख्य वक्ता: महर्षि मैत्रेय, विदुर को अपना उपदेश जारी रखते हुए
- मुख्य श्रोता: विदुर, जो ऋषि अत्रि के गृह के विषय में एक प्रश्न पूछते हैं
- मुख्य स्थान: मैत्रेय का विदुर को दिया गया आश्रम-उपदेश, जो स्वायम्भुव मन्वन्तर की घटनाओं का वर्णन करता है — जिसमें ऋक्ष पर्वत का वन भी है, जहाँ ऋषि अत्रि ने तप किया
- मुख्य विषय-वस्तु: स्वायम्भुव मनु की तीन कन्याओं — आकूति, देवहूति तथा प्रसूति — से उत्पन्न वंश, जिसमें भगवान् यज्ञ का जन्म, अत्रि के आश्रम में तीनों देवों का प्राकट्य, तथा दिव्य ऋषि नर-नारायण का अवतरण सम्मिलित है
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 1, श्लोक 1-66
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

प्रथम पुरुष की तीन कन्याएँ

मैत्रेय चतुर्थ स्कन्ध का आरम्भ एक पारिवारिक चित्र को पूर्ण करते हुए करते हैं जिसे उन्होंने पहले आरम्भ किया था। अपने दो पराक्रमी पुत्रों प्रियव्रत तथा उत्तानपाद के अतिरिक्त, स्वायम्भुव मनु की अपनी पत्नी शतरूपा से तीन कन्याएँ भी थीं। इतिहासों में विख्यात उनके नाम थे — आकूति, देवहूति तथा प्रसूति।

मैत्रेय उवाच

मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे ।

आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥ १ ॥

maitreya uvāca manos tu śatarūpāyāṁ tisraḥ kanyāś ca jajñire ākūtir devahūtiś ca prasūtir iti viśrutāḥ

अर्थ: मैत्रेय ने कहा: मनु को उनकी पत्नी शतरूपा से तीन कन्याएँ भी हुई, जो आकूति, देवहूति तथा प्रसूति नामों से विख्यात थीं। (स्कन्ध 4, अध्याय 1, श्लोक 1)

शतरूपा की सहमति से मनु ने अपनी कन्या आकूति का विवाह प्रजापति रुचि के साथ किया — उसे पुत्रिका के रूप में देते हुए, अर्थात् इस समझ के साथ दी गई कन्या कि उसका प्रथम पुत्र उसके पिता द्वारा गोद लिया जाएगा, यद्यपि आकूति के अपने दो भाई पहले से थे।



स्वायम्भुव मनु और उनकी पत्नी शतरूपा अपनी तीन कन्याओं — आकूति, देवहूति तथा प्रसूति — को प्रस्तुत करते हैं, जिनसे ऋषियों, राजाओं तथा देवताओं के महान् वंश प्रवाहित होंगे (श्लोक 1-2)।

स्वयं भगवान्, यज्ञ के रूप में जन्मे

आगे जो आता है, वह इस अध्याय का प्रथम आश्चर्य है। पूजनीय रुचि, जो एक सच्चे ब्राह्मण के आध्यात्मिक तेज से देदीप्यमान थे, ने पहले परम एकाग्रता से भगवान् की आराधना की, और फिर आकूति के माध्यम से एक युगल सन्तान — एक पुत्र तथा एक पुत्री — को जन्म दिया। वह पुत्र, मैत्रेय बताते हैं, कोई साधारण बालक न था: वह स्वयं भगवान् विष्णु थे, यज्ञ के रूप में अवतरित, और इसीलिए यज्ञ नाम से जाने गए। वह कन्या दक्षिणा थी, लक्ष्मी का अंश-प्राकट्य, भगवान् से अभिन्न। आनन्दमग्न स्वायम्भुव अपने नाती को (यथावचन) अपने घर ले आए, जबकि रुचि ने दक्षिणा को अपने पास रखा।

समय आने पर भगवान् यज्ञ, समस्त यज्ञों के अधीश्वर, ने दक्षिणा से विवाह किया, जो उनकी अभिलाषी थीं, और उनके माध्यम से बारह पुत्रों को उत्पन्न किया — तोष, प्रतोष, सन्तोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वह्न, सुदेव तथा रोचन। ये बारह, सामूहिक रूप से तुषित कहलाए, स्वायम्भुव मनु के काल में देवताओं का पद धारण करते थे, जबकि मरीचि आदि सात ऋषियों के रूप में रहे, और स्वयं भगवान् यज्ञ ने इन्द्र का ही आसन ग्रहण किया। यहाँ पहले से ही एक शान्त शिक्षा है: उस प्रथम युग में भगवान् केवल दूर से संसार का पालन नहीं करते थे — उन्होंने स्वयं इसके इन्द्र के रूप में इसके शासन का भार वहन किया।

कदम को नौ कन्याएँ तथा उनके ऋषि-पांते

मनु की दूसरी कन्या देवहूति ऋषि कर्दम को दी गई थीं — और उनकी कथा, भगवान् कपिल के जन्म तक, तृतीय स्कन्ध के अन्तिम अध्यायों को भर चुकी थी। यहाँ मैत्रेय केवल उसका संकेत करते हैं और कर्दम तथा देवहूति की नौ कन्याओं की ओर बढ़ते हैं, जिनमें से प्रत्येक किसी महान् ब्राह्मण ऋषि, ब्रह्मा के मानस-पुत्र, की पत्नी बनी।

इन नौ विवाहों के माध्यम से समस्त लोक जन-पूरित हुए। कर्दम की कन्या कला, मरीचि की पत्नी, ने कश्यप तथा पूर्णिमा को जन्म दिया। ऋषि अत्रि की पत्नी अनसूया ने तीन विख्यात पुत्रों को जन्म दिया — और यहीं सुनते हुए विदुर अपना प्रश्न रोक नहीं पाते।



ऋषि कर्दम तथा देवहूति की नौ कन्याएँ महान् मानस-पुत्र ऋषियों को विवाह में दी जाती हैं, और इन सम्बन्धों के माध्यम से लोक साधु-सन्तति से भर जाते हैं (श्लोक 12-15)।

अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीज्जज्ञे सुयशसः सुतान् ।

दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसम्भवान् ॥ १५ ॥

atreḥ patny anasūyā trīñ jajñe suyaśasaḥ sutān dattaṁ durvāsasaṁ somam ātmeśa-brahma-sambhavān

अर्थ: अत्रि की पत्नी अनसूया ने तीन यशस्वी पुत्रों को जन्म दिया — दत्त (दत्तात्रेय), दुर्वासा तथा सोम (चन्द्रदेव) — जो क्रमशः भगवान् विष्णु, भगवान् शिव तथा ब्रह्मा के अंश-प्राकट्य के रूप में जन्मे। (स्कन्ध 4, अध्याय 1, श्लोक 15)

तीनों महान् देव एक ही आश्रम में क्यों आए

विदुर विस्मय से भर जाते हैं। वे अपने गुरु से पूछते हैं — यह कैसे हुआ कि तीनों प्रमुख देव — ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव, जो पृथक्-पृथक् सृष्टि, पालन तथा संहार के हेतु हैं — सब एक ही ऋषि के घर में एक साथ प्रकट हुए?

विदुर उवाच

अत्रेगृहि सुरश्रेष्ठाः स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ।

किञ्चिच्चीर्षवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो ॥ १६ ॥

vidura uvāca atrer gr̥he sura-śreṣṭhāḥ sthity-utpatty-anta-hetavaḥ kiñcic cikīrṣavo jātā etad ākhyāhi me guro

अर्थ: विदुर ने कहा: किस प्रयोजन से देवश्रेष्ठ — जगत् के पालन, सृष्टि तथा संहार के हेतु — ऋषि अत्रि के घर में प्रकट हुए? हे गुरुदेव, यह मुझे बताइए। (स्कन्ध 4, अध्याय 1, श्लोक 16)

मैत्रेय का उत्तर इस अध्याय के सबसे सुन्दर अंशों में से एक है। ब्रह्मा द्वारा सृष्टि को बढ़ाने की प्रेरणा पाकर, ऋषि अत्रि अपनी पत्नी के साथ ऋक्ष पर्वत पर चले गए, जो पलाश तथा अशोक वृक्षों के वन से आच्छादित था और निर्विन्ध्या नदी के चट्टानों पर गिरने के स्वर से गूँजता था। वहाँ उन्होंने प्राणायाम द्वारा अपने मन को वश में किया और पूरे सौ वर्ष एक पैर पर खड़े रहे, केवल वायु पर जीवित रहते हुए, शीत-उष्ण तथा प्रत्येक द्वन्द्व को परास्त करते हुए। और उस विशाल तपस्या भर एक ही विचार उनके मन में भरा रहा: “मैं उस समस्त जगत् के अधीश्वर की शरण लेता हूँ। वे मुझे अपने समान पुत्र प्रदान करें।”



ऋक्ष पर्वत पर ऋषि अत्रि सौ वर्ष एक पैर पर खड़े रहकर गहन तप करते हैं, केवल जगत् के अधीश्वर के समान पुत्र की प्रार्थना करते हुए (श्लोक 17-20)।

उनकी तपस्या इतनी प्रचण्ड थी कि उनकी एकाग्रता की अग्नि, उनके मस्तक के शिखर से उठती हुई, तीनों लोकों को सन्तप्त करने लगी। यह देखकर तीनों अधीश्वर — ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव — एक साथ उनके आश्रम में आए, मार्ग भर उनकी महिमा अप्सराओं, ऋषियों, गन्धर्वों तथा उच्च लोकों के अन्य प्राणियों द्वारा गाई जाती रही। उनका अन्तःकरण प्रकाश से भर उठा, और अत्रि ने तीनों महान् देवों को अपने-अपने वाहनों पर विराजमान देखा — एक हंस, गरुड़ तथा वृषभ नन्दी — प्रत्येक अपने चिह्न को धारण किए। वे साष्टांग गिर पड़े, अपनी अंजलि में रखी विनम्र भेंटों से उनकी पूजा की, और उनके तेज से चौंधियाई आँखें मूँदकर, मधुर तथा उपयुक्त शब्दों में उनकी स्तुति की।

पूजित एवं वन्दित होते हुए भी अत्रि यह नहीं जानते थे कि उन्होंने वास्तव में इन तीनों में से किसे पुकारा था, अतः अपने विचार समेटकर उन्होंने अपनी प्रार्थना को शब्दों में व्यक्त किया।

चेतस्तत्प्रवणं युज्जन्नस्तावीत्संहताञ्जलिः ।

श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोकगरीयसः ॥ २६ ॥

अत्रिरुवाच

विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानै-

र्मयागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः । ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं व-स्तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहृतः ॥ २७ ॥

cetas tat-pravaṇaṁ yuñjann astāvīt saṁhatañjaliḥ ślakṣṇayā sūktayā vācā sarva-loka-garīyasaḥ
atrir uvāca

viśvodbhava-sthiti-layeṣu vibhajyamānair māyā-guṇair anuyugaṁ vigṛhīta-dehāḥ te brahma-
viṣṇu-giriśāḥ praṇato 'smy ahaṁ vas tebhyaḥ ka eva bhavatāṁ ma ihopahūtaḥ

अर्थ: अपने मन को उन्हीं पर स्थिर करके, अत्रि ने हाथ जोड़कर, कोमल तथा श्रद्धापूर्ण शब्दों में, उन तीनों सर्वाधिक पूज्य देवों की स्तुति की: “हे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव, आप तीनों ने प्रकृति के गुणों के माध्यम से, युग-युग में सृष्टि, पालन तथा संहार के निमित्त, अपने को तीन रूपों में विभक्त किया है। मैं आप तीनों को प्रणाम करता हूँ। किन्तु मुझे बताइए: आप तीनों में से, वास्तव में मैंने किसे पुकारा है?” (स्कन्ध 4, अध्याय 1, श्लोक 26-27)

उन्होंने अपना प्रश्न आगे बढ़ाया, क्योंकि उन्होंने तो केवल जगत् के एकमात्र अधीश्वर का आवाहन किया था, उनके समान पुत्र की कामना करते हुए तथा केवल उन्हीं का ध्यान करते हुए — फिर भी भगवान् मानव-मन की कल्पना से सर्वथा परे हैं, और अब तीन देवों ने उनके एकल आवाहन का उत्तर दिया था; सच्चे विस्मय में डूबे अत्रि ने यह जानने की प्रार्थना की कि ऐसा क्यों हुआ।

मैत्रेय विदुर को आगे की घटना सुनाते हैं: अत्रि को इस प्रकार बोलते सुनकर तीनों देव मुस्कराए और उन्हें अत्यन्त मधुर शब्दों में उत्तर दिया।

देवा ऊचुः

यथा कृतस्ते सङ्कल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा ।

सत्सङ्कल्पस्य ते ब्रह्मन् यद्वै ध्यायति ते वयम् ॥ ३० ॥

devā ūcuḥ yathā kṛtas te saṅkalpo bhāvyam tenaiva nānyathā sat-saṅkalpasya te brahman yad
vai dhyāyati te vayam

अर्थ: देवों ने उत्तर दिया: हे ब्राह्मण, जैसा तुमने संकल्प किया है, ठीक वैसा ही होगा, अन्यथा नहीं — क्योंकि तुम्हारा संकल्प सदैव सत्य सिद्ध होता है। हम तीनों वही एक परम सत्य हैं, जिसका तुम ध्यान कर रहे थे। (स्कन्ध 4, अध्याय 1, श्लोक 30)

ध्यान से देखिए कि अत्रि ने वास्तव में क्या माँगा था। उन्होंने भगवान् से स्वयं आकर उनके साथ रहने की प्रार्थना नहीं की थी — उन्होंने तो केवल उनके “समान” एक पुत्र माँगा था (श्लोक 20)। शुद्ध भक्ति की कसौटी पर यह अब भी एक व्यक्तिगत इच्छा ही थी, किसी सिद्ध आत्मा का निष्काम समर्पण नहीं। फिर भी तीनों देवों ने इस इच्छा को तौलकर छोटी नहीं आँका; उन्होंने इसे ठीक वैसा ही, और खुले हाथों से पूर्ण किया — ऐसे पुत्र देकर जो केवल भगवान् के सदृश नहीं थे, अपितु ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की वास्तविक किरणें धारण किए हुए थे। यही इस अध्याय का मौन धर्मतत्त्व है: भगवान् किसी प्रार्थना को इस आधार पर नहीं तौलते कि याचना कितनी आध्यात्मिक रूप से उन्नत है, अपितु इस आधार पर कि वह कितनी निष्ठा तथा एकाग्रता से धारण की गई है। हृदय जिस वस्तु पर अटूट संकल्प से स्थिर हो जाता है, भगवान् अपनी कृपा से वही प्रदान करते हैं — और पूर्णतः प्रदान करते हैं।

दिव्य अंशों से जन्मे तीन पुत्र

देवों ने अपना वचन निभाया। चन्द्रदेव सोम ब्रह्मा के अंश से जन्मे; योग के परम आचार्य दत्तात्रेय भगवान् विष्णु के अंश से प्रकट हुए; और ऋषि दुर्वासा भगवान् शिव के अंश के रूप में आए।

सोमोऽभूद्ब्रह्मणोऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित् ।

दुर्वासाः शङ्करस्यांशो निबोधाङ्गिरसः प्रजाः ॥ ३३ ॥

somo 'bhūd brahmaṇo 'mśena datto viṣṇos tu yogavit durvāsāḥ śaṅkarasyāṁśo nibodhāṅgirasah prajāḥ

अर्थ: सोम ब्रह्मा के अंश से जन्मे, योगवेत्ता दत्तात्रेय भगवान् विष्णु से, तथा दुर्वासा भगवान् शंकर (शिव) के अंश से। अब अंगिरा की सन्तति के विषय में सुनो। (स्कन्ध 4, अध्याय 1, श्लोक 33)



अत्रि तथा अनसूया को दिए गए तीन पुत्र — चन्द्रदेव सोम, योग के परम आचार्य दत्तात्रेय, तथा ऋषि दुर्वासा — ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के अंश-प्राकट्य के रूप में प्रकट होते हैं (श्लोक 30-33)।

ऋषियों, राजाओं तथा असुरों को एक नदी

अत्रि के गृह से मैत्रेय विदुर को वंश-वृक्ष की चौड़ी होती शाखाओं में नीचे ले जाते हैं। ऋषि अंगिरा की पत्नी श्रद्धा से चार कन्याएँ तथा समय आने पर देवताओं के महान् आचार्य बृहस्पति हुए। पुलस्त्य से ऋषि अगस्त्य उतरे, और उनकी परम्परा से धनपति कुबेर तथा विश्वविख्यात रावण, कुम्भकर्ण एवं विभीषण भी। पुलह तथा क्रतु ने साधु पुत्रों को जन्म दिया, और अकेले क्रतु की पत्नी ने साठ हजार सूक्ष्म, तेजस्वी ऋषियों को उत्पन्न किया, जो वालखिल्य कहलाए। वसिष्ठ के सात शुद्धहृदय ब्राह्मण पुत्र थे; अथर्वा की परम्परा से दधीचि आए; और तेजस्वी भृगु से उनके पुत्र धाता तथा विधाता, भगवान् की भक्त श्री नामक कन्या, तथा — उनके पुत्र कवि के माध्यम से — ऋषि उशना, जो शुक्राचार्य के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं, असुरों के आचार्य, आए। ऋषि मार्कण्डेय भी इसी परम्परा से प्रकट होते हैं। मैत्रेय रुककर बताते हैं कि केवल इस कर्म-सन्तति के विवरण को श्रद्धापूर्वक सुनना ही अपने पापों को धोने का एक शीघ्र उपाय है।

प्रसूति, दक्ष, तथा नर-नारायण का अवतरण

मनु की सबसे छोटी कन्या प्रसूति दक्ष को दी गई, जो ब्रह्मा के एक अन्य मानस-पुत्र थे, और उनके माध्यम से उन्होंने सोलह सुन्दर कन्याओं को उत्पन्न किया। इनमें से तेरह दक्ष ने धर्म को दीं; एक अग्निदेव को; एक समवेत पितरों को; और अन्तिम, सती, को भगवान् शिव को, जो सांसारिक बन्धनों को काटने वाले हैं।

धर्म की तेरह पत्नियाँ ऐसे नाम धारण करती हैं जो स्वयं सद्गुण हैं — श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि आदि — और उनकी सन्तानें भलाई के और भी प्रतिरूप हैं, जैसे कल्याण, अभय, सुख तथा मन की शान्ति। किन्तु इस वंश का मुकुट है अन्तिम: धर्म की पत्नी मूर्ति, समस्त गुणों की खान, ने दिव्य ऋषि नर तथा नारायण को जन्म दिया। उनके अवतरण पर सम्पूर्ण संसार आनन्दमग्न हो उठा; वायु, नदियाँ तथा पर्वत शान्त हो गए, दिव्य वाद्य बज उठे, आकाश से पुष्प बरसे, और ब्रह्मा तथा समस्त देवों ने भगवान् की स्तुति गाई।



धर्म के गृह में दिव्य ऋषि नर तथा नारायण के अवतरण पर सम्पूर्ण संसार शान्त हो जाता है, आकाश से पुष्प बरसते हैं और देवगण स्तुति गाते हैं (श्लोक 52-57)।

ये दोनों, मैत्रेय विदुर को बताते हैं, स्वयं श्रीहरि के अंश-प्राकट्य हैं — और यही आगे चलकर संसार में, पृथ्वी का भार उतारने के लिए, यदुओं के अलंकार श्रीकृष्ण तथा कुरुओं में श्रेष्ठ अर्जुन के रूप में प्रकट हुए।

ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ ।

भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरुद्वहौ ॥ ५९ ॥

tāv imau vai bhagavato harer aṁśāv ihāgatau bhāra-vyayāya ca bhuvah kṛṣṇau yadu-kurūdvahau

अर्थ: वस्तुतः ये दोनों भगवान् श्रीहरि के अंश हैं, जो पृथ्वी का भार दूर करने के लिए इस संसार में आए — दोनों कृष्ण, यदुओं तथा कुरुओं में श्रेष्ठ (श्रीकृष्ण तथा अर्जुन)। (स्कन्ध 4, अध्याय 1, श्लोक 59)

अग्निदेव, पितर, तथा आने वाले शोक की छाया

मैत्रेय इस अध्याय का समापन दो और पावन वंशों का लेखा देकर करते हैं। अग्निदेव की पत्नी स्वाहा से तीन अग्नि-देवता जन्मे — पावक, पावमान तथा शुचि — जिनसे, फिर, पैंतालीस और उत्पन्न हुए, जिससे अपने पिताओं तथा पितामह सहित वे उनतालीस पावन अग्नियाँ बनते हैं जिनके नाम पर वैदिक यज्ञों में आहुति दी जाती है। और स्वधा, दक्ष की कन्या, पितरों के चार गणों की समान पत्नी बनीं।

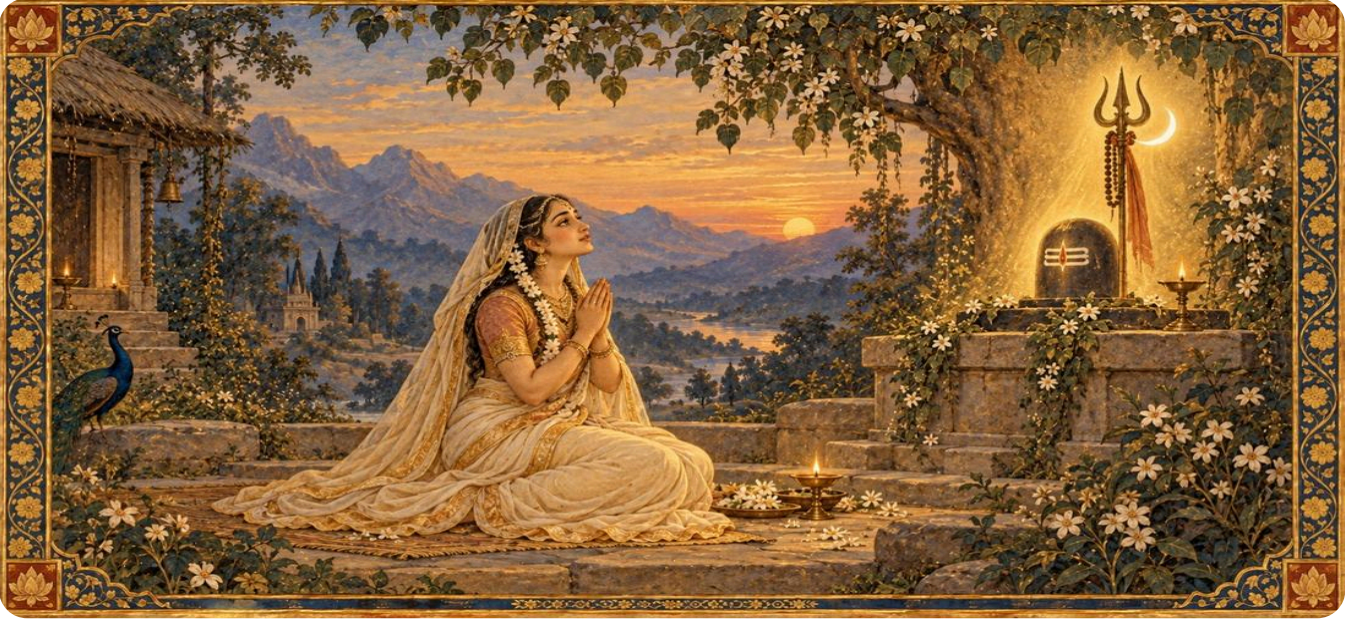
अध्याय एक शान्त, अशुभ संकेत पर समाप्त होता है जो अगले अध्याय को खोलेगा। सती, दक्ष की सबसे छोटी कन्या तथा भगवान् शिव की प्रिय पत्नी, अपने पति के प्रति पूर्णतः समर्पित थीं — फिर भी, अभी अत्यन्त युवा रहते हुए ही, उन्होंने योग की शक्ति से अपना शरीर त्याग दिया, अपने पिता दक्ष के भगवान् शिव के प्रति अकारण द्वेष पर क्षुब्ध होकर।

भवस्य पत्नी तु सती भवं देवमनुव्रता ।

आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥ ६५ ॥

bhavasya patnī tu satī bhavaṁ devam anuvratā ātmanaḥ sadṛśaṁ putraṁ na lebhe guṇa-śīlataḥ

अर्थ: भव (भगवान् शिव) की पत्नी सती, जो अपने पति के प्रति पूर्णतः समर्पित थीं, को गुण तथा शील में अपने समान पुत्र प्राप्त नहीं हुआ। (स्कन्ध 4, अध्याय 1, श्लोक 65)



सती, दक्ष की सबसे छोटी कन्या तथा भगवान् शिव की समर्पित पत्नी, जिनके अपने पिता के द्वेष पर शोक की कथा आगे के अध्यायों में खुलेगी (श्लोक 65-66)।

आने वाले शोक की उस छाया के साथ चतुर्थ स्कन्ध का प्रथम अध्याय समाप्त होता है — वंश की एक नदी जो हमें प्रथम पुरुष की कन्याओं से लेकर स्वयं श्रीकृष्ण के वचन तक, और दक्ष तथा सती की महान् त्रासदी की देहरी तक ले आई है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. दिव्यता पवित्र गृहस्थों के माध्यम से संसार में प्रवेश करती है। बार-बार — आकृति के माध्यम से भगवान् यज्ञ के रूप में, अत्रि तथा अनसूया के माध्यम से तीन महान् पुत्रों के रूप में, धर्म तथा मूर्ति के माध्यम से नर-नारायण के रूप में — भगवान् तथा उनकी शक्तियाँ अभिमान के महलों में नहीं, अपितु तप तथा भक्ति के घरों में अवतरित होती हैं (श्लोक 3-4, 15, 52-53)।
2. सच्चा संकल्प ठीक वैसा ही फलित होता है। अत्रि ने “जगत् के अधीश्वर के समान” पुत्र की प्रार्थना की, और देवों ने स्पष्ट कहा: “जैसा तुमने संकल्प किया, ठीक वैसा ही होगा।” एक शुद्ध, एकनिष्ठ प्रार्थना अनसुनी नहीं जाती (श्लोक 20, 30)।
3. एक सत्य तीन रूप धारण करता है, और ठीक वही उत्तर देता है जो माँगा गया है। अत्रि ने भगवान् का स्वरूप जाने बिना ही एक परम भगवान् की आराधना की थी; तीनों देव प्रकट हुए और घोषित किया कि वे उसी एक सत्ता के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं जिस पर अत्रि ने अपना हृदय स्थिर किया था, तथा यह वचन दिया कि उनका संकल्प, सत्य होने के कारण, अवश्य फलित होगा। सृष्टि, पालन तथा संहार भले ही तीन मुखों में प्रकट हों, किन्तु उनके पीछे एक ही अखण्ड सत्य विद्यमान है (श्लोक 27-30)।
4. पावन वंश सुनना भी पवित्र करता है। मैत्रेय कहते हैं कि इस पावन सन्तति के विवरण को श्रद्धापूर्वक सुनना ही पाप धोने का एक शीघ्र उपाय है — क्योंकि पवित्रों के जीवन पर मनन करना पवित्रता की ओर खिंचना है (श्लोक 46)।
5. भक्ति अपने लिए कुछ नहीं माँगती, योग्य पुत्र तक नहीं। सती भगवान् शिव के प्रति पूर्णतः समर्पित थीं फिर भी उन्हें अपने समान पुत्र नहीं मिला, और तब भी उनका प्रेम कभी न डगमगाया — अगले अध्यायों में परखी जाने वाली निःस्वार्थ भक्ति का एक शान्त पूर्वाभास (श्लोक 65-66)।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

नामों के एक अध्याय को सरसरी दृष्टि से पढ़कर आगे बढ़ जाना सरल है, मानो “असली” शास्त्र तभी आरम्भ होता है जब कथाएँ शुरू होती हैं। किन्तु रुककर देखिए कि ये नाम वास्तव में क्या अंकित कर रहे हैं। यह एक ऐसे संसार का वंश-वृक्ष है जिसमें भगवान् बार-बार आते रहते हैं — एक घर में यज्ञ-देवता के रूप में, दूसरे में दिव्य प्रकाश के तीन पुत्रों के रूप में, तीसरे में उन युगल ऋषियों के रूप में जो एक दिन कृष्ण तथा अर्जुन होंगे। यह वंशावली एक शुष्क बही नहीं है; यह इस बात की साक्षी है कि दिव्यता मानव-गृहस्थों से कभी दूर नहीं, कि वह जल की भाँति उसी ओर खिंचती है जहाँ सच्ची भक्ति होती है। अत्रि ने सौ वर्ष एक पैर पर खड़े रहकर केवल एक ही वस्तु माँगी — भगवान् के समान एक सन्तान — और स्वर्ग एक वन-आश्रम तक झुक आया उन्हें उत्तर देने। जब हम सोचते हैं कि क्या हमारी छोटी-सी प्रार्थनाएँ सुनी जाती हैं, यह अध्याय कोमलता से उत्तर देता है: वही भगवान् जिसने अत्रि की अन्धकारमय आँखों को प्रकाश से भर दिया, आज भी सुनते हैं, और आज भी आते हैं, जहाँ भी हृदय सच्चाई से उनकी ओर मुड़ा होता है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज अत्रि के एकनिष्ठ प्रार्थना के उदाहरण का अनुसरण कीजिए। हृदय की एक सच्ची अभिलाषा चुनिए — वस्तुओं के लिए नहीं, अपितु किसी योग्य वस्तु के लिए, जैसे भक्ति में स्थिरता, किसी कठिन व्यक्ति के प्रति धैर्य, अथवा अपने परिवार का कल्याण। कुछ मिनट शान्त बैठिए, अपनी श्वास को स्थिर कीजिए, और उस एक प्रार्थना को पूर्ण ध्यान से भगवान् को अर्पित कीजिए, यह दोहराते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” यह अभ्यास आपको वही सिखाए जो अत्रि जानते थे — कि सच्चे, अखण्ड हृदय से की गई प्रार्थना का उत्तर पहले से ही दिया जा रहा है।

उपसंहार

चतुर्थ स्कन्ध का प्रथम अध्याय इस ग्रन्थ को किसी युद्ध अथवा उपदेश से नहीं, अपितु एक नदी से खोलता है — वंश की वह चौड़ी होती धारा जो स्वायम्भुव मनु की तीन कन्याओं से समस्त लोकों में बहती है। उस धारा में इस अध्याय के सच्चे रत्न चमकते हैं: स्वयं भगवान् यज्ञ के रूप में एक भक्त के घर को कृतार्थ करने आए; तीनों महान् देव एक साथ अवतरित होकर एक ही ऋषि की शताब्दी-लम्बी तपस्या का उत्तर देने आए; तथा नर-नारायण का प्राकट्य, जो एक दिन कृष्ण तथा अर्जुन के रूप में पृथ्वी पर विचरेंगे। और इसके अन्त में, सती के संक्षिप्त, शोकपूर्ण उल्लेख में, अध्याय आने वाले नाटक का परदा शान्ति से उठा देता है। विदुर को, और हमें, मैत्रेय का सन्देश अस्पष्ट नहीं है: दिव्यता इस संसार में प्रवेश करने के लिए सदा तत्पर है, और वह वहीं करती है जहाँ उसे भक्ति तथा तप से पवित्र एक गृहस्थ मिलता है।

श्रीमद्भागवतम् का यह दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (सम्पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, प्रथम अध्याय।

- श्रृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust.
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं संस्तुति के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दर्शाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा संबद्धता अथवा समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-4-adhyay-1-swayambhuv-manu-kanyaon-ki-santati.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

